किताबें पढ़ने का चस्का बच्चों में स्कूल के प्रति अनुराग बढ़ाता है

शिक्षिका पूनम भाटिया से दीपक राय की बातचीत



दीपक : पूनमजी, अपनी शैक्षिक यात्रा के बारे में बताएँ।

पूनम भाटिया : मैं जयपुर की निवासी हूँ और मेरी प्रारम्भिक शिक्षा यहीं हुई है। कक्षा 6 से 12 तक मैं जवाहर नवोदय विद्यालय की छात्रा रही। नवोदय एक आवासीय विद्यालय था और अध्ययन काल का लम्बा समय वहीं पर गुज़रा। जयपुर के अलग-अलग क्षेत्रीय परिवेश से आए हुए बहुत-से बच्चों के साथ मैं रही।

माइग्रेशन सिस्टम के तहत मैंने कक्षा 9 और 10 की पढ़ाई गुजरात के जामनगर से की। बहुत छोटी अवस्था में गुजरात जाना एक टर्निंग पॉइंट ही रहा। कक्षा 10 उत्तीर्ण करने के बाद जद्दोजहद हुई कि विषय के तौर पर विज्ञान ही लिया जाए, परन्तु आईएएस बनने का सपना था, इसलिए विज्ञान तो लेना नहीं था। शिक्षकगण का मानना था कि होशियार बच्चों को विज्ञान विषय लेकर डॉक्टर या इंजीनियर ही बनना चाहिए। तब मैंने अपने अध्यापकों से वादा किया कि मैं बहुत पढ़ाई करूँगी।

मैंने कक्षा 10 से ही आईएएस की पढ़ाई शुरू कर दी थी, परन्तु मेरी मम्मी मुझे एसटीसी करवाना चाहती थीं। वे ख़ुद राजकीय सेवा में एक शिक्षिका के रूप में पदस्थ थीं, तो उन्हें लगा कि मेरी बच्ची भी शिक्षिका ही बननी चाहिए। उनके कहने से मैंने एसटीसी की व एसटीसी करते ही मेरी नौकरी भी लग गई।

नौकरी लगने के बाद मैंने स्नातक, स्नातकोत्तर व बीएड किया।

दीपक : आज एक शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका को कैसे देखती हैं?

पूनम भाटिया : बतौर शिक्षक मुझे क़रीबन 25 साल हो गए हैं। शुरुआती दौर में मेरी पोस्टिंग गाँव में थी। 2004 से मैं जयपुर में ही कार्यरत हूँ। मैं अँग्रेज़ी पढ़ाती हूँ। अभी सांगानेर,

जयपुर में एक राजकीय विद्यालय में हेड मास्टर की भूमिका का निर्वाह कर रही हूँ।

राज्य सरकार की ओर से पाठ्यपुस्तकों, विभिन्न वर्कबुक, एबीएल किट, मॉड्यूल, टीएलएम, आदि का निर्माण किया है।

आज मुझे लगता है कि एक शिक्षिका के रूप में, मैं बेहतर कर पा रही हूँ। बच्चों के स्तर, उनकी पारिवारिक व सामाजिक पृष्ठभूमि, सीखने के वातावरण, सीखने की क्षमता, कार्य करने की क्षमता, आदि मुद्दों पर बातचीत होती रहती है। इसके साथ ही, पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, पाठ्यक्रम के उद्देश्य, पाठ्यक्रम का स्तर, शिक्षा, बच्चे और समाज, आदि विषयों पर प्रबुद्ध व अनुभवी लोगों से भी चर्चा होती रहती है।

आज मैं एक व्यवस्थापक के रूप में अधिक कार्य कर रही हूँ। ऐसे में, मैं ज़्यादा समय अध्यापन के लिए नहीं दे पाती हूँ। हालाँकि यथासम्भव कोशिश करती हूँ कि प्रतिदिन छुट्टी होने के बाद बच्चों को कुछ समय पढ़ा पाऊँ। कक्षा 5 से 8 के बहुत से बच्चे उस समय रुक जाते हैं। मेरा सबसे प्रिय काम पढ़ना और पढ़ाना ही है, इसलिए जब अवसर मिलता है सिर्फ़ तभी नहीं, अपितु अवसर निकालकर बच्चों की कक्षा में जाती हूँ और उनके साथ काम करती रहती हूँ।

दीपक : शिक्षिका बनने के बाद आपने खुद में क्या-क्या बदलाव देखे?

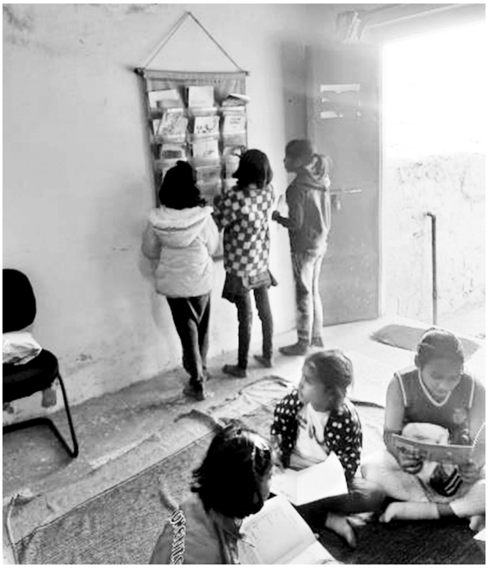
पूनम भाटिया : 2010 में सरकार की एक शिक्षा योजना पायलट प्रोजेक्ट के रूप में विद्यालय में आई। मैं तभी से शिक्षण सम्बन्धी सभी कार्यों में रुचि लेने लगी। इसके बाद से ही मैं आत्मिक व मानसिक रूप से शिक्षक के रूप में स्वयं को गढ़ने लगी। अब लगता है, शायद मैं शिक्षक बनने के लिए ही थी। और कुछ बनती तो न तो उस पेशे के साथ और न ही ख़ुद के साथ न्याय कर पाती।

इसी दौरान मैंने प्रशिक्षण देना शुरू किया। मैंने पाया कि कुछ भी बोलने से पहले ख़ुद के पास भी ज्ञान व पूरी सामग्री होनी चाहिए। प्रशिक्षण से पहले मैं, स्वयं को तैयार करने के क्रम में कई किताबें पढ़ने लगी।

पाठ्यपुस्तकों के लिए लेखन कार्य करने के दौरान निरन्तर अध्यापकों व शिक्षाविदों से मिलना होता रहा और मैंने उनके विचारों व कार्यों को जाना।

इन सब कार्यों को करते हुए ही मैं 'संवाद' समूह से जुड़ी। हम सब जब भी मिलते, अपने-अपने क्षेत्र, अनुभवों और कार्यों की बातें किया करते। ऐसे में एक दिन स्त्री रोग विशेषज्ञ रहीं डॉक्टर प्रीतम पाल ने भेंट स्वरूप एक पुस्तक मुझे दी, जिसका नाम था *तोत्तोचान*।

इस किताब को पढ़कर मुझे लगा कि शिक्षक के रूप में, मैं बहुत पीछे हूँ। इस किताब से मुझे समझ आया कि शिक्षक के रूप में बच्चों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए, बच्चों की मनोवृत्तियाँ क्या होती हैं, बहुधा अध्यापकगण किस तरह से व्यवहार करते हैं, और हमें किस तरह से बच्चों के साथ काम करते हुए सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं में मसरूफ़ होना होता है। इसी तरह





पर उसका बहुत असर होता है। इसी के साथ मैं बच्चों के अभिभावकों से भी मिलने की प्रक्रिया व अपनी सोच को सकारात्मक रूप से सुदृढ़ करती चली गई।

इसी तरह की एक और घटना मेरे साथ हुई। एक महिला साथी मेरे विद्यालय में कुछ किताबें लेकर आतीं और बच्चों को बाँट देती थीं। फिर उनके साथ कुछ देर बातें करतीं और मुझे कहकर जाती थीं कि जो किताबें मैंने बच्चों को बाँटी हैं, उनपर कुछ-कुछ बात आप कर लीजिएगा। 10-15 दिन बाद मैं फिर आऊँगी। वे आती थीं और बच्चों के साथ बातचीत करती थीं। पुरानी किताबें ले जातीं और कुछ अन्य दे जाती थीं। तब मैं उस महिला को देखकर सोचती थी कि ये बच्चों के साथ इतनी मेहनत क्यों करती हैं! यह बच्चे तो इतना पढ़ते ही नहीं हैं।

की बाल मनोविज्ञान से जुड़ी नई किताबें भी मैंने खोजीं और पढ़ीं।

दीपक : क्या कोई घटना, कोई प्रैक्टिस ऐसी थी, जिसने आपको अपने पेशे के प्रति और जवाबदेह होना सिखाया हो?

पूनम भाटिया : जब आप शिक्षक के रूप में कार्य करते हैं तो बहुत-सी चीज़ों पर आप पर्याप्त फ़ोकस बनाए रखते हैं। लेकिन कई बार यह भी होता है कि आप ख़ुद ही नहीं जान पाते कि आप किस दिशा में या किस राह पर कार्य कर रहे हैं।

एक घटना का ज़िक्र करना चाहूँगी। मैं एक शाम संगीत के कार्यक्रम में गई। वहाँ पर एक बच्ची मेरे पास आई और बड़े उत्साह से गले मिली। मैं उसे नहीं पहचान पाई थी। उसने बताया कि मैं उसे पढ़ा चुकी हूँ। अब वह बड़ी हो गई थी और वह उस संगीत के कार्यक्रम को संचालित कर रही थी। उसने याद दिलाया तो मुझे याद आया कि मैं उसे कहाँ पढ़ाती थी। वो कहने लगी कि आपने मेरी मम्मी को बुलाकर भी समझाया था और कहा था कि यह कर सकती है, परन्तु इसके साथ लगातार मेहनत की आवश्यकता है।

इस घटना के बाद मुझे लगा कि जो कार्य हम सहज रूप से भी करते चले जाते हैं, बच्चों

मुझे हमेशा लगता था कि ये महिला अपना समय क्यों बर्बाद करती हैं। लेकिन धीरे-धीरे मैंने देखा कि वह बच्चे जो लगातार पुस्तकें पढ़ रहे थे, उनके अन्दर एक अलग ही बदलाव आ रहा था। वे लिखने, पढ़ने व व्यक्त करने में अधिक समझदार हो रहे थे और उनके कार्य दूसरे बच्चों से थोड़े अलग हो रहे थे। इस प्रक्रिया को समझने में मुझे क़रीबन 2 साल लगे और आज मैं ख़ुद पुस्तकालय की संस्कृति में इज़ाफ़ा करने के लिए लगातार प्रयासरत रहती हूँ।

दीपक : रीडिंग कॉर्नर या लाइब्रेरी या बाल साहित्य को लेकर क्या सोचती हैं? सीखने-सिखाने में उनकी भूमिका क्या है? आपके अनुभव क्या रहे हैं?

पूनम भाटिया : मुझे पढ़ने का शौक़ बचपन से ही रहा है। नवोदय विद्यालय में भी काफ़ी

बड़ा पुस्तकालय था तो मेरा यह शौक़ बना रहा और आगे भी बढ़ पाया।

इस क्रम में, मैं 'सृजन' समूह की बात करना चाहूँगी। यह अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन की एक पहल है, जिसमें कई शिक्षक साथी जुड़े हुए हैं और पढ़ने-लिखने की संस्कृति को उन्नत कर रहे हैं। उसमें हम विभिन्न कहानियों, कविताओं, यात्रा संस्मरण, जीवनी, विचार, लेख, पुस्तक, आदि पढ़ते हैं और अपनी समझ के अनुसार टिप्पणियाँ व समीक्षा करते हैं। इस तरह की बातचीत से समझ में आता है कि किसी भी कहानी और कविता की व्यापकता के कई पक्ष, दृष्टिकोण व पहलू हो सकते हैं। हम एक पक्ष के बारे में सोचते या काम करते हैं, लेकिन उसी समय उन रचनाओं के अलग-अलग पक्षों पर अन्य व्यक्ति कार्य कर रहे होते हैं। जब सबकी राय सुनी और पढ़ी जाती है तो हम उसके वृहत्तर आयामों को समझ पाते हैं।



इस समूह ने साहित्य की समझ और संवेदना दी तो उसने हमें एक बेहतर और संवेदनशील मनुष्य बनने की ओर उन्मुख किया। इसने हमारी कक्षा को बदला और हमारे स्कूल के पूरे माहौल को पहले से अधिक सुसंगत और समावेशी बनाया।

अब बारी आती है, साथी शिक्षकों एवं अध्ययनरत विद्यार्थियों के साथ पुस्तकों की जुगलबन्दी की।

मैंने देखा है, या यूँ कहें, 25 साल के अनुभव में मैंने यह पाया है कि जिसने पुस्तकों को अपना दोस्त बनाया है, उसके सोचने और समझने की शक्ति में एक अलग ही नयापन व भावनाएँ दर्ज हुई हैं।

मेरे कई साथी शिक्षक जो पढ़ने-लिखने में संलग्न रहते हैं, उनकी संज्ञानात्मक, संवेगात्मक व भावनात्मक समझ एक अलग ही स्तर की होती है। जिन विद्यार्थियों के घरों में पढ़ने को महत्त्व दिया जाता है, वे स्वयं ही पढ़ने की ओर आकर्षित रहते हैं। वे सभी पढ़ने को बोझ न समझते हुए उसे रुचि का कार्य मानते हैं और लगातार ख़ुद के साथ कार्य करते रहते हैं।

दीपक : बच्चों की साहित्य में रुचि विकसित करने के लिए आपने स्कूल में किस तरह के प्रयास किए?

पूनम भाटिया : जैसा कि मैंने आपको बताया, मेरे विद्यालय में एक महिला साथी आती थीं। उनसे जुड़ने के बाद मुझे लगा कि मुझे भी इस तरह से सभी बच्चों के साथ कार्य करना चाहिए।

इसकी शुरुआत मैंने अपने कार्यालय से ही की। मैंने ऑफ़िस में ही जूट का कई ख़ानों वाला दीवार पर लटकाने वाला फ़ोल्डर लगाया और उसमें किताबें भी रखीं।

मैंने बच्चों को स्वयं किताबें चुनने के लिए कहा और उन्हें पढ़ने पर ज़ोर डाला। बच्चों से उन किताबों में पढ़ी गई सामग्री पर चर्चा करने लगी। ज़्यादा उनसे सुना और कुछ-कुछ प्रश्नों से बात को आगे बढ़ाया। संस्था प्रधान होने के नाते मैं शिक्षण प्रक्रिया अनवरत रूप से नहीं

कर पाती हूँ इसलिए मैंने उपाय निकाला कि कार्यालय, जहाँ मैं ज़्यादातर समय होती हूँ, की दीवार पर इसे लगा दिया जाए। एक दरी बिछा दी गई। सभी बच्चों को कह दिया गया कि अपनी मर्ज़ी से जब चाहें आएँ और पढ़ें।

फ़ोल्डर के पास एक रजिस्टर भी रखा गया। इसमें लिखने और दर्ज करने का कार्य भी बच्चे ही करने लगे। कोई रोक-टोक न होने की वजह से वे लगातार आने लगे। प्रार्थना सभा में रोज़ दो बच्चों को अपनी पढ़ी हुई पुस्तक पर चर्चा करने और सभी बच्चों को उनसे प्रश्न पूछने के लिए बोला गया, ताकि बच्चे अपनी पुस्तक पर अच्छे-से संवाद क़ायम कर पाएँ।

प्रार्थना सभा में बोलने की होड़ के लिए बच्चों में किताबें पढ़ने का चस्का लग गया। बच्चों में एक-दूसरे से सीखने की प्रक्रिया अधिक होती है, अतः उनकी संख्या में इज़ाफ़ा हुआ। कई बच्चे किताबें पढ़ने लगे और उनपर अपनी बात रखने लगे। इस कार्य से उनके आत्मविश्वास में लगातार वृद्धि तो हुई ही, उनके समझ के स्तर को भी एक व्यापक दृष्टिकोण मिला। उनमें पढ़ने के प्रति रुचि जागृत हुई है। वे पहले से अधिक संवेदनशील और बेहतर 'लर्नर' साबित हुए हैं और अपने समाज की विविधताओं को सही सन्दर्भों में समझने की ओर अग्रसर दिख रहे हैं। उनकी कल्पना शक्ति बढ़ी है और वे अपने अनुभवों को भी कुछ बेहतर ढंग से अभिव्यक्त करने लगे हैं। साथ ही, स्कूल के प्रति उनका अनुराग भी बढ़ा है।

दीपक : आप पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यक्रम, आदि के निर्माण कार्य में शामिल रहती हैं, प्रश्न पत्र बनाती रहती हैं, प्रशिक्षण देने व उनके मॉड्यूल पर भी काम करती रहती हैं। क्या फ़ील्ड के अनुभव काम में आते हैं? यदि हाँ, तो कैसे?

पूनम भाटिया : इन सबमें ख़ुद ने क्या पढ़ा-लिखा है, हम कैसे भाव रखते हैं, हमारे विचार कैसे होते हैं, हम सोचते कैसा हैं और हमारे अनुभव, सभी काम आते हैं।

एक लम्बी अवधि से मैं अध्ययन-अध्यापन का कार्य कर रही हूँ, लेकिन अभी भी जब मैं कुछ लेखन कार्य करने जाती हूँ तो अपने-आप को एक विद्यार्थी से ज़्यादा नहीं पाती हूँ। मेरे ज़ेहन में हमेशा विद्यार्थी, उनकी भौगोलिक परिस्थितियाँ, मानसिक परिस्थितियाँ, मानसिक स्तर, रहन-सहन, ग्रामीण व शहरी परिवेश, उनके माता-पिता की स्थिति व भूमिका, घर की आर्थिक स्थितियाँ, माता-पिता की शैक्षिक पृष्ठभूमि, परिवार का सामाजिक स्तर, आदि रहता है।

शुरुआती, प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर बच्चों के साथ अगर कुछ भी शैक्षिक गतिविधि करवानी है, तो उसके लिए उनके स्तर तक जाना अनिवार्य हो जाता है। बच्चों के लिए किसी भी एक्टिविटी, पुस्तक, कार्यपत्रक, मॉड्यूल, आदि का निर्माण करते हुए यह ज़रूर देखा जाता है कि सभी महत्त्वपूर्ण पक्ष उनमें शामिल हों।

मैं शोध के कार्य से एक बार हनुमानगढ़ गई थी। वहाँ मैंने पाया कि पंजाब के आसपास का इलाक़ा होने से वहाँ तीसरी भाषा के रूप में पंजाबी चलती है और बोलने का लहज़ा भी पंजाबी लिए हुए होता है। इसी प्रकार, एक बार राजकीय काम के चलते बाँसवाड़ा गई तो मैंने पाया कि बाँसवाड़ा और उदयपुर की बेल्ट में गुजराती जैसा लहज़ा आ जाता है। वहाँ पर गुजराती भाषा के शब्द ज़्यादा काम में आते हैं।

इन सबसे यह समझ बनी कि जो भी हम लिखेंगे या जो भी किसी पुस्तक में होगा, वह पूरे राज्य के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए होगा। इसके बाद से, जब भी लेखन सम्बन्धी कार्य करती हूँ तो पूरा राज्य, उसकी विविधता, परिवेश, आवश्यकता, भाषा, बोलियाँ, क्षेत्रीयता, आदि ध्यान में रखती हूँ।

शुरुआत में, जब मैं प्रश्न पत्र निर्माण के कार्य से जुड़ी और मैंने अपने स्तर पर एक प्रश्न पत्र बनाया, तो मुझे लगा कि मैंने बहुत बड़ा

काम किया है। मेरा बनाया गया प्रश्न पत्र जब मेरे एक सीनियर साथी के हाथ में गया और उन्होंने मेरे द्वारा बनाए गए उस प्रश्न पत्र को जाँचा तो मेरे सामने ही उसे फाड़ दिया। उन्होंने कहा कि यह बिलकुल बेकार प्रश्न पत्र है। मेरा मन बहुत ख़राब हुआ।

लेकिन साथ ही उन्होंने मुझे समझाया कि आप जब भी लेखन कार्य करें या प्रश्न पत्र निर्माण सम्बन्धी कार्य करें तो हमारे राज्य में रहने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों का भी ध्यान रखें। जैसे आपके प्रश्न पत्र में लिखे गए नामों में सभी तरह के नाम हों। यदि ऐसा नहीं होगा तो छोटे-छोटे बच्चे कैसे इस प्रश्न पत्र को अपना प्रश्न पत्र मानेंगे।

उन्होंने यह भी कहा कि आपको हर तरह की विविधता को ध्यान में रखना है, चाहे वह क्षेत्रगत हो या जातिगत। इसके साथ, आपके बनाए प्रश्न पत्र में लिंगभेद, रंगभेद सम्बन्धी बात या काम भी नहीं होना चाहिए।



धीरे-धीरे मैंने ख़ुद के साथ काफ़ी कार्य किया और हर तरह के लेखन कार्य में उपरोक्त वर्णित सभी बातों का ध्यान रखा और अभी भी रखती हूँ।

दीपक : हम थोड़ी चर्चा कोविड के दौरान हुए लर्निंग लॉस के बारे में करेंगे। आपको क्या लगता है वह लर्निग लॉस कैसा था, कितना था और अभी उस क्षति की पूर्ति के मामले में हम क्या कर रहे हैं? और जो कर रहे हैं वह कितना कारगर है? आपके अनुभव क्या रहे?

पूनम भाटिया : जी, इसमें कोई दो राय नहीं कि कोविड काल सभी के लिए और ख़ासकर बच्चों के लिए एक त्रासदी ही रहा। बच्चों की लर्निंग 'कम' हुई ही, उनकी मानसिक एवं भावनात्मक क्षति भी हुई। लेकिन इसकी रिकवरी के प्रयास रंग ला रहे हैं और हम पहले से कुछ आगे बढ़े हैं, ऐसा मुझे तो लगता है अपने अनुभवों के आधार पर।

अपनी बात करूँ तो राजकीय निर्देशानुसार, मैंने बच्चों को कोविड काल के दौरान व्हाट्सएप ग्रुप से जोड़ दिया था। कुछ बच्चे जुड़ पाए, कुछ नहीं। जो जुड़ पाते थे, उनके साथ ऑनलाइन कक्षाएँ शुरू की गईं। पहले-पहल उनको मात्र कार्यपत्रक या कुछ काम दे दिया जाता था, फिर धीरे-धीरे पाठ के अनुसार वीडियो डालने लगे। विद्यालय खुलने व बन्द होने की प्रक्रिया लम्बी चली, अन्ततः एक लम्बे अन्तराल के बाद विद्यालय खुल ही गए।

उस समय व्हाट्सएप एक ताक़तवर ज़रिया हो गया था अपनी बातों को पहुँचाने का। इसके साथ ही ऑनलाइन मीटिंग का दौर भी शुरू हो गया था। धीरे-धीरे समझ में आने लगा कि बच्चों के साथ भी ऑनलाइन कार्य व पढ़ाई की जा सकती है। इस क्रम में, मैंने प्रतिदिन शाम को बच्चों की ऑनलाइन कक्षा लेना शुरू कर दिया था। यह सिलसिला आज तक अनवरत जारी है।

यह कार्य एक नया प्रयोग था, जिसने मेरे पिछले सभी दृष्टिकोणों को बदल दिया। अब मैं शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करने लगी हूँ। मैं बच्चों को ऑनलाइन पढ़ाती हूँ। यहाँ यह कहना ज़्यादा उचित होगा कि मैं ऑनलाइन कक्षा में जुड़ती हूँ, क्योंकि बच्चे तो ख़ुद ही पढ़ते हैं और मुझे अध्याय पढ़कर समझाते हैं। मैं सिर्फ़ उन्हें पढ़ने

के लिए उत्साहित करती हूँ। इसमें मैं उन सबको कहती हूँ कि हर अध्याय को छोटे-छोटे भागों में बाँट लो। सबसे पहले उसको चुपचाप पढ़ो, उसका अर्थ समझो।

यानी, ज्ञान का सुदृढ़ होना तो हुआ ही है, साथ ही आत्मविश्वास का भर जाना भी हुआ है। अब बच्चे पूरी किताब स्वयं पढ़ लेते हैं। इससे रीडिंग पक्ष के साथ-साथ उनका समझने वाला पक्ष भी काफ़ी मज़बूत हुआ है। बच्चे अब बेझिझक अपनी बात रखने लगे हैं।

इसी के साथ कुछ कार्य इस तरह से भी किए गए, जिससे उनको सह शैक्षिक गतिविधियाँ करने में मज़बूती मिली। इसमें प्रमुख था, समर कैम्प लगवाना।

'एजुकेट गर्ल्स' नामक संस्था के साथ गर्मियों की छुट्टियों के दौरान 40 दिन की कार्यशाला की गई। इस कार्यशाला में बच्चे, नृत्य, गीत, संगीत, चित्रकला, अनुपयोगी सामान से उपयोगी सामान बनाने, सुन्दर व उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करने, जैसे कई काम सीखने लगे। पढ़ाई में मुख्यतः गणित, हिन्दी व अँग्रेज़ी विषय में बच्चों के कमज़ोर पक्षों को दूर करना सम्मिलित था।

इस कैम्प के अन्त में मंच पर बच्चों ने विभिन्न प्रस्तुतियाँ भी दीं। विद्यालय के बच्चों ने कार्यक्रम तैयार किए एवं 20 विद्यालयों के अन्य विद्यार्थियों के साथ उन्होंने अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इससे बच्चों के मनोभावों में एक अलग ही अन्तर देखने को मिला।

बच्चे अब काफ़ी उत्साह से काम करने लगे हैं। वे अपनी ज़िम्मेदारियों का निर्वहन स्वयं ही करने लगे हैं। बच्चों ने विद्यालय वातावरण को भी समृद्ध किया है। अन्य गतिविधियों में उत्साह से भाग लेने के साथ-साथ वे अपनी बातों को मज़बूती से रखने लगे हैं, प्रश्न पूछने लगे हैं और सहमति के साथ-साथ असहमति भी दर्ज कराने लगे हैं। विभिन्न सवालों के ज़रिए वे अपनी जिज्ञासाओं को जानने, समझने और पूछने लगे हैं। इस तरह से बच्चे शैक्षिक रूप से भी बेहतर होते दिख रहे हैं और सोशियो-इमोशनल सन्दर्भों में भी मज़बूत हो रहे हैं। इसका श्रेय समग्रता में किए गए प्रतिबद्ध प्रयासों को जाता है।

पूनम भाटिया, 1999 से राजकीय सेवा में तथा 2017 से उच्च प्राथमिक विद्यालय, सांगानेर में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत हैं। शिक्षा से वंचित समुदायों के बच्चों के अध्यापन व शैक्षिक विकास में लगी रहती हैं। पढ़ने-पढ़ाने और पुस्तक संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए रीडिंग कॉर्नर व पुस्तकालयों के निर्माण में सक्रिय हैं। शिक्षण सामग्री निर्माण और शिक्षक-प्रशिक्षण में अपनी भूमिकाएँ निभाती हैं। रक्तदान और पौधारोपण अभियान जैसे सामाजिक सरोकारों से भी जुड़ी हुई हैं। उनका का एक काव्य संग्रह *प्रेम रागिनी* प्रकाशित हुआ है।

सम्पर्क : bhatip426@gmail.com

दीपक कुमार राय अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर, राजस्थान में 2019 से रिसोर्स पर्सन के रूप में काम कर रहे हैं। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर, और डीफ़िल डिग्री लेने के बाद उच्च शिक्षा में प्राध्यापक के रूप में अध्ययन-अध्यापन से जुड़े रहे। आपने 'दिगंतर' में एसोसिएट फ़ेलो के रूप में शैक्षणिक शोध से जुड़ी गतिविधियों में भागीदारी की है। आपकी इतिहास, साहित्य, विचार और वैचारिकी पर केन्द्रित लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने बिहार प्रगतिशील लेखक संघ की पत्रिका *रोशनाई*, साप्ताहिक समाचार पत्र *गणादेश, प्रतिश्रुति, आवाज़ जन मन की, संघतिया* आदि पत्रिकाओं के सम्पादन सहित *सैद्धान्तिकी* और *मतादर्श* नामक दो शोध पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया है।

सम्पर्क : deepak.rai@azimpremjifoundation.org